इकाई 24 कृषक वर्ग

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 कृषक वर्ग : परिभाषा व पहचान की समस्या

24.2.1 कृषक वर्ग का वर्गीकरण

24.3 गतिशीलता के निर्धारक तत्त्व

24.3.1 तकनीकी विकास

24.3.2 ऐतिहासिक तत्व या घटनायें

24.3.3 पारिस्थितिकीय आयाम

24.3.4 कृषक संरचना तथा समुदायों की भूमिका

24.4 कृषक संघर्षों की विविधता

24.4.1 राष्ट्रवादी

24.4.2 सामन्त विरोधी

24.4.3 राज्य/शासन विरोधी संघर्ष

24.4.4 भूण्डलीकरण विरोधी या नए कृषक/किसान आंदोलन

24.5 सारांश

24.6 शब्दावली

24.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

24.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

24.0 उद्देश्य

यह इकाई ग्रामीण कृषक वर्ग से सम्बन्धित है, किसी प्रकार वर्षों तक निष्क्रिय, रुढ़िवादी तत्व के रूप में माने जाने वाला यह वर्ग विवेकशील, प्रगतिशील सामाजिक ताकत के रूप में परिवर्तित हुआ है। क्या भूखण्डों के आकार में अंतर, सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक व्यवस्था में भिन्नता के कारण इस वर्ग को एकरूप श्रेणी माना जा सकता है? इसे परिभाषित करना सबसे बड़ा प्रश्न है। इस इकाई में कृषक गतिशीलता के निर्धारक तत्वों का परिचय भी दिया गया है, विभिन्न स्थानों में कृषक संघर्षों का भी उल्लेख है। साथ ही, हाल के वर्षों में कृषक आन्दोलन द्वारा राजनीति, राज्य व विश्व पूँजी के सम्मुख प्रस्तुत विभिन्न प्रश्नों पर भी यह इकाई विचार करती है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में कृषक श्रेणियों पर विवाद जान सकेंगे;
- विभिन्न देशों के कृषक आन्दोलन जान सकेंगे; तथा
- तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में वर्ग की प्रकृति तथा उनके द्वारा उठाए गए मुद्दे जान सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

कृषक वर्ग को आज तक एक विनीत, परम्परावादी, रुढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी, यथास्थिति को स्वीकार करने वाले ग्रामीण कोटि का माना जाता था जो अपने ग्रामीण व सामाजिक परिप्रेक्ष्य से परे नहीं देख पाते। उन्हें उस श्रेणी का माना जाता था जो दृढ़ता से ग्रामीण मूल्यों से जुड़े थे तथा आधुनिकता के सभी विकल्पों के प्रति आँखे मूंदे थे। साथ ही उन्हें मंद बुद्धि, 'आलू के बोरे' अथवा निम्न बुर्जुआ कोटि का माना जाता था जो सच्चे अर्थों में वर्ग भी नहीं कहे जा सकते थे, न ही योजनाबद्ध तरीके से अपने दल या संगठन बना सकते थे। कृषकों के विषय में यह दृष्टिकोण विभिन्न स्थानों और देशों में उनकी सत्ता परिवर्तन की क्षमता, राष्ट्रवादी आन्दोलन में उनकी

भागीदारी, सामन्तवाद और सामन्तवादियों व उत्पीड़न के खिलाफ उनका संघर्ष, उत्पादन की आधुनिक प्रौद्योगिकी अपनाने, उनके द्वारा राष्ट्रवाद, राज्य, स्वतंत्रता, विकास और हाल ही में भूमण्डलीकरण के मुद्दे उठाने को नज़रअंदाज़ करता हैं।

24.2 कृषक वर्ग : परिभाषा व पहचान की समस्या

कृषक वर्ग की कोई परिभाषा नहीं है। यह ग्रामीण क्षेत्र के अनेक तबकों को जोड़ने या घटाने से प्रस्तुत अस्पष्टता तथा कृषक वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका की आंशिक समझ से उत्पन्न होता है। कृषक का शाब्दिक अर्थ है साधारण औज़ारों से भूमि पर कार्य करने वाला व्यक्ति। सारी की सारी ग्रामीण जनता जिनमें बड़े ज़मींदार तथा खेतिहर मज़दूर भी शामिल हैं, कृषक मान लिए गए हैं। इस परिभाषा में वर्गीकरण करने से विभिन्न श्रेणियों में भूखण्डों, प्रौद्योगिकी, रोज़गार श्रम का प्रयोग आदि से उत्पन्न विभिन्नताओं की अनदेखी हो जाती है।

कृषक वर्ग की कुछ परिभाषाएँ हैं। कृषक संघर्षों के विद्वान **एरिक वोल्फ** (Exie Wolf) ने उन्हें ऐसे लोग कहा है जिनका अस्तित्व खेती में संलग्नता से जुड़ा है और वे खेती की प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में स्वायत्त निर्णय लेते हैं।" इस परिभाषा में निर्धन और सीमान्त किसान तथा बंटाईदारों (share croppers) की श्रेणियाँ सम्मिलित नहीं है। दूसरी ओर, एक अन्य विद्वान **थियोडोर शैनिन** (Theodar Shanin) उन्हें वह लोग मानता है जो "छोटे कृषि उत्पादक हैं जो साधारण औजारों और अपने पारिवारिक श्रम द्वारा मुख्य रूप से अपने उपभोग के लिए और आर्थिक व राजनीतिक सत्ता के प्रति अपनी बाध्यताओं को पूरा करने के लिए करते हैं।" यह परिभाषा उन धनिकों और पूँजीपतियों को इस श्रेणी में शामिल नहीं करती जो अधिकतम लाभ के लिए विस्तृत बाज़ार में प्रवेश करते हैं। **इरफान हबीब** ने भी एक सरल परिभाषा दी है। "वह कृषक उस व्यक्ति को कहते हैं जो अपने आप, अपने पारिवारिक उपकरणों द्वारा कृषि करता है।" इन परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए कृषक वर्ग को "जनसंख्या की वह कोटि माना जा सकता है जिनके पास कुछ भूभाग है, जो कृषि उत्पादन के लिए मुख्यतः पारिवारिक या भाड़े के श्रम पर निर्भर है, जो प्रतियोगी बाज़ार या सीमित बाज़ार व्यवस्था में विश्वास रखता है।"

तथापि सभी को कृषक वर्ग नहीं कहा जा सकता। ग्रामीण क्षेत्र में किसानों व भूमिहन मज़दूरों के भी वर्गीकरण हैं। उदाहरण के लिए, किसान, उत्पादन के संसाधनों के वैकल्पिक प्रयोग की आशा करता है और बाज़ार का जोखिम उठाने को तैयार रहता है। कृषक से किसान में परिवर्तन मात्र मनोवैज्ञानिक ही नहीं वरन् भौतिकवादी भी है। परन्तु भूमि से जुड़ा होने के कारण उसे भी कृषक मान लिया जाता है।

खेतिहर मज़दूरों को भी कृषकों की श्रेणी में मान लिया जाता है क्योंकि भूमि के विकास में उनकी संलग्नता और उसके उत्पाद का उनके लिए महत्व उनके लिए भी उतना ही है जितना भूमि के मालिकों व उनके जोतने वालों के लिए। भूमि दोनों के लिए एक तत्व है और किसी भी प्रकार का सामाजिक, आर्थिक व तकनीकी परिवर्तन अपनी भूमि पर खुद खेती करने वालों तथा खेतिहर मज़दूरों दोनों को प्रभावित करता है।

भूमिहीन मज़दूर, कृषक वर्ग से मनोवैज्ञानिक व व्यवहार में भिन्न है। वह निश्चित मज़दूरी, काम के निश्चित घंटे, उचित शैक्षणिक व स्वास्थ्य सुविधाओं व क्रय शक्ति में वृद्धि को वरीयता देता है।

जनजातियों को भी कृषक वर्ग मान लिया जाता है विशेषतः उनको जो किसी क्षेत्र विशेष में दीर्घकाल से बसे हैं और भूमि पर कार्य करते हैं। भू-संरचना में किसी भी प्रकार का परिवर्तन उन्हें भी समान रूप से प्रभावित करता है।

24.2.1 कृषक वर्ग का वर्गीकरण

कृषक वर्ग के अन्तर्गत विविध श्रेणियाँ हैं: छोटे, बड़े, मध्यम, सीमान्त आदि। इस वर्गीकरण का आधार जोतों के आकार (भूभाग पर अधिकार) सहित उनकी आर्थिक स्थिति है। **एन्जेल्स** जैसे

मार्क्सवादी सामान्तवादी कृषक, काश्तकार तथा खेतिहर मज़दूरों में वर्गीकरण करते है जो क्रमशः अपने भूस्वामियों के लिए बेगारी करते हैं, ज्यादा लगान देते हैं तथा अपनी छोटी जोतों पर खेती करते हैं।

रूस में क्रान्ति के संदर्भ में, **लेनिन** ने कृषक वर्ग को पाँच श्रेणियों में विभक्त किया - **मध्यम, धनी, छोटे, कृषि सर्वहारा तथा अर्ध सर्वहारा**। खेतिहर मज़दूर उन्हें कहा गया जो अपने श्रम को किराए पर लगाते थे। अर्ध सर्वहारा वह थे जो छोटी जोतों के मालिक थे और आंशिक रूप से खेतिहर मज़दूर का काम करते थे; छोटे कृषक काश्तकार थे, वे अपने श्रम को किराए पर लगाते थे। बड़े किसान, पूँजीपति उद्यमी होते हैं जो बहुतायत में श्रमिक रखते हैं। धनी कृषक को 'कुलाक' कहा गया जो एक प्रति क्रान्तिकारी भी थे। मध्यम कृषक अपने ऊपर ही आश्रित है जो समय के साथ धनी कृषकों या सर्वहारा की श्रेणी में आ जाएगा।

चीन में क्रान्ति के संदर्भ में **मॉओ** ने कृषक वर्ग को भूस्वामी, मध्यम कृषक, निर्धन कृषक और श्रमिकों में श्रेणीबद्ध किया। परन्तु उसने पूँजीपति भूस्वामी की श्रेणी का प्रयोग नहीं किया जो या तो बहुत कमज़ोर था या एक ताकत के रूप में स्थित नहीं हो पा रहा था। भूस्वामी अर्ध उद्यमी था जो लगान वसूल कर दूसरों का शोषण करता था। मध्यम कृषक दूसरों का शोषण नहीं करता पर धनी कृषक के सम्बन्ध में यह सही नहीं है। निर्धन किसान अपना श्रम विक्रय करते हैं और लगान, या ऋण पर ब्याज के माध्यम से शोषण का शिकार होते हैं। श्रमिक किराए पर श्रम लगाते हैं।

भारतीय स्थिति में भी इसी प्रकार की वर्गीकरण की समस्याएँ हैं जो मुख्यतः सांस्कृतिक विविधताओं, कृषि संरचनाओं के विभेदों, जोतों के विभिन्न आकारों तथा जाति विभेदों के कारण उत्पन्न हुई है। भारत के संदर्भ में मोटे तौर पर तीन श्रेणियाँ बताई जा सकती हैं। पहला, मालिक या अनुपस्थित जमींदार व छोटे स्वामी जो काश्तकारों और उपकाश्तकारों से लगान लेकर उनका शोषण करते हैं। दूसरा, किसान जो छोटी जोतों के मालिक होते हैं या जीविका के लिए काश्तकार होते हैं और उनके संपत्तिगत हित होते हैं। तीसरा, मज़दूर जो निर्धन काश्तकार या भूमिहीन श्रमिक होते हैं जो जीवन निर्वाह के लिए श्रम विक्रय करते हैं।

बोध प्रश्न 1

नोटः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) कृषक वर्ग की परिभाषा व जाँच (की पहचान) कैसे कर सकते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) कृषक वर्ग की विभिन्न श्रेणियाँ कौन सी हैं?

.....

.....

.....

.....

3) कृषक वर्ग से क्या तात्पर्य हैं?

.....

.....

.....

.....

24.3 गतिशीलता के निर्धारक तत्व

अनेक निर्धारक तत्वों ने कृषकों की गतिशीलता में मदद की है। इनमें से कुछ हैं प्रौद्योगिकी, ऐतिहासिक तत्व, भौगोलिक परिस्थितियाँ, कृषि संरचनाएँ तथा सम्बन्ध, सरकारी नीतियाँ, जाति व सामुदायिक सम्बन्ध।

24.3.1 तकनीकी विकास

तकनीकी विकास ने कृषि सम्बन्धों को प्रभावित किया है। सिंचाई, बीज प्रौद्योगिकी, अधिक उत्पादन करने वाली किस्मों का प्रयोग, हरित क्रान्ति, जैव उर्वरकों के स्थान पर रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल, हल-बैलों के स्थान पर ट्रेक्टरों के प्रयोग इत्यादि से विभिन्न देशों में कृषि में पूँजीवाद का युग आया है। वास्तव में पश्चिमी विश्व में प्राचीन कृषि संग्रहण से ही औद्योगीकरण। औद्योगिक पूँजीवाद विकसित हुआ। यह फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि जैसे पूर्ववर्ती औपनिवेशिक देशों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अन्य शब्दों में, तृतीय दुनिया के देशों जैसे भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, बर्मा, चीन, नाईजीरिया आदि से बहुत पहले पश्चिमी देशों में पूँजीवादी रूपान्तरण हो चुका था। विकासशील देशों में औपनिवेशिक शासन के मध्य में या अन्त के आस पास पूँजीवाद शुरू किया गया था। रुचिकर तथ्य यह है कि इन देशों में पूँजीवाद ऊपर से थोपा गया जिस कारण इन देशों का एक समान विकास नहीं हुआ। अधिकांशतः कृषिक पूँजीवादी, पूर्व पूँजीवादी सामाजिक संरचना के साथ साथ या मिलकर बढ़ता रहा। परन्तु पश्चिमी विश्व, जिसमें रूस, अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि शामिल हैं, में पूँजीवाद अंदर से ही उपजा, या तो सामन्तवाद के विनाश से या उपनिवेशों के शोषण से या फिर राज्य नीतियों के माध्यम से। कृषिक पूँजीवाद दो मार्गों से पनप सकता है - अमेरिकी मार्ग या प्रशियन मार्ग (या जंकर (Junker) पूँजीवादी मार्ग)। तृतीय विश्व का निर्बल कृषिक पूँजीवाद पाश्चात्य देशों को चुनौती देने में सक्षम नहीं है। तथापि, कृषिक पूँजीवाद के आरंभ से नये वर्गीकरण अवश्य उभरे हैं। रूस में इसने प्रतिक्रान्तिकारी ताकत कुलाकों तथा खेतिहर मज़दूरों को जन्म दिया। भारत में इसने वृषभ (बैल) पूँजीपति या भद्र किसान या मालिकों को जन्म दिया। इसके अन्य प्रभाव भी पड़े: कृषि श्रमिक अधिक मज़दूरी, काम के निश्चित घंटे, स्वास्थ्य व मातृत्व सुविधाओं आदि की माँग करने लगे हैं। दूसरे शब्दों में, कृषिक पूँजीवाद ने आधारभूत, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कृषि श्रमिकों तथा पूँजीवादी कृषकों की सौदेबाजी क्षमता को बढ़ाया है। यह यूरोपीय महाद्वीप में उदारीकरण व एकीकरण के संदर्भ में वहाँ के शराब बनाने वाले कृषकों की संरक्षण की माँग से स्पष्ट है।

24.3.2 ऐतिहासिक तत्व या घटनाएँ

ऐतिहासिक तत्वों या घटनाओं जैसे औपनिवेशिक शासन, युद्ध में सफलता या विफलता, मुद्रा-स्फीति, राष्ट्रवाद, विकास के नये आविष्कारों इत्यादि से भी गतिशीलता पर प्रभाव पड़ा है। भूमि सुधार के मुद्दे सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन के साथ साथ गतिशीलता को भी प्रभावित करते हैं। चीन, भारत, अल्जीरिया, वियतनाम आदि में औपनिवेशिक शासन का ज़्यादा असर हुआ। जापान व ताइवान में भूमि-सुधारों ने गतिशीलता को प्रभावित किया है। 1970 के दशक के आरंभ में तेल की कीमतों में वृद्धि ने विभिन्न महाद्वीपों में, भारत व पाकिस्तान सहित, हरित क्रान्ति की गति को मन्द कर दिया था।

24.3.3 पारिस्थितिकीय आयाम

पारिस्थितिक आयाम जैसे फसल प्रतिरूप (cropping pattern) लगाने के निर्णय, उन्नत बीजों को अपनाना, सिंचाई के प्रतिरूप आदि ने भी कृषक गतिशीलता को प्रभावित किया है। पिछले कुछ वर्षों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने तृतीय विश्व में जिस प्रकार के फसल प्रतिरूप आरंभ किए हैं उससे वहाँ के कृषकों में भय की भावना उत्पन्न हुई है। तृतीय विश्व के देशों जैसे भारत में कृषकों ने टर्मिनेटर बीज का विरोध किया है क्योंकि उन्हें यह भय है कि इससे पुनः उत्पादन की आशा समाप्त हो सकती है इससे कोमल पौध के समूल नष्ट होने की संभावना हो जाती है।

24.3.4 कृषक संरचना तथा समुदायों की भूमिका

कृषिक संरचनाएँ जिनमें भूमि स्वामित्व, भूमि अधिकार, काश्तकारी अधिकार, जोतों का आकार आदि शामिल हैं गतिशीलता पर प्रभाव डालते हैं। इन तत्वों से काश्तकारी अधिकार, जोतने वाले को भूमि, भूमि-सुधार काश्तकारों की सुरक्षा आदि के मुद्दों ने जन्म लिया है। सामन्तवाद के उन्मूलन, दास प्रथा व बेगारी का समापन जैसे अन्य महत्वपूर्ण मुद्दे भी उभरे हैं। इतिहास के बिभिन्न चरणों में कृषकों की गतिशीलता में यह मुद्दे दृष्टिगत हुए हैं: 1950-60 में भारत में, 15वीं शताब्दी के बाद इंग्लैण्ड में, 1900 के आरंभ में रूस में, 1920-47 के बीच चीन में, 1946-52 में फिलीपीन्स में तथा 15वीं शताब्दी के बाद जर्मनी में।

समुदायों अथवा जातियों की भूमिका से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। यद्यपि जाति भारतीय समाज का प्रमुख लक्षण है तथापि समुदायों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इससे प्रकट होता है कि भारत में या अन्य स्थानों में कृषक गतिशीलता विशिष्ट रूप में वर्गीय घटनाक्रम नहीं है। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान विभिन्न जातियों जैसे वातारों, (wattars), जाटों और कोलियों ने जमींदारों के खिलाफ खुद को क्रियाशील बनाया। समुदाय जैसे मोपिला, कुंबी और पट्टीदारों ने सामन्ती उत्पीड़न, ज्यादा लगान व उपकर या सैंस (cess) के खिलाफ उठ खड़े हुए। विश्व के अन्य भागों में भी समुदाय जैसे फिलीपीन्स में हुक्स (Huks), लेटिन अमेरिका में चेपा (Cheapas) आदि समुदाय के आधार पर राज्य, शासन या भूमिपतियों के खिलाफ जागरूक हुए।

कई देशों जैसे भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नाईजीरिया में औद्योगीकरण, उदारीकरण, भूमि सुधार, बैंक राष्ट्रीयकरण आदि सरकारी नीतियों के तथाकथित कृषक विरोधी प्रकृति ने भी कृषक गतिशीलता में मदद की है।

बोध प्रश्न 2

नोटः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) कृषक गतिशीलता के निर्धारक तत्व कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

2) पाश्चात्य देशों और भारत के कृषिक पूँजीवाद में अन्तर करो।

.....

.....

.....

.....

3) भारत और पाश्चात्य देशों के कृषक गतिशीलता के समान मुद्दों को स्पष्ट करो।

.....

.....

.....

.....

24.4 कृषक संघर्षों की विविधता

श्रमिकों की गतिशीलता के निर्धारक तत्वों की विविधता के कारण कृषक संघर्ष भी विविध रूप के हो सकते हैं। परन्तु कृषक संघर्ष या क्रान्ति में कौन सा वर्ग नेतृत्व संभालता है, इस विषय पर मतभेद हैं। एक विचार यह है कि कृषक संघर्षों में सदैव 'मध्यम कृषक' अग्रणी रहता है क्योंकि अन्य श्रेणियों की अपेक्षा यह अधिक संवदेनशील व आर्थिक रूप से स्वायत्त है। दूसरा विचार यह है कि राष्ट्रवादी आन्दोलन की स्थिति में 'धनी कृषक' दो कारणों से अग्रणी होता है: **पहला**, विशाल बाज़ार पर नियंत्रण पाने के लिए इसका वृहद कार्यक्रम जिस कारण यह राष्ट्रीय स्तर पर बड़ी ताकत के रूप में उभरते हैं। **दूसरा**, अपने विकास के मार्ग में आने वाली हर बाधा को निर्मूल कर देते हैं। यह राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रत्यक्ष भाग लेकर या उसे समर्थन देकर संभव होता है। परन्तु यह भी एक सच्चाई है कि इतिहास में कई अवसरों पर निर्धन कृषकों ने (चीन में) नेतृत्व किया है। साथ ही यह भी सच है कि कई बार क्रान्तिकारी बनने की अपेक्षा कृषक प्रतिक्रान्तिकारी बन जाते हैं। पूर्ववर्ती सोवियत संघ में कुलकों की भूमिका से यह स्पष्ट है जब उन्होंने स्वयं सोवियत राज्य का घनघोर विरोध किया था। भारतीय संदर्भ में विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा कृषकों की सापेक्ष निष्क्रियता के तीन कारण माने जाते हैं: जाति प्रथा, बुर्जुआ का प्रभाव, व गाँधीजी का प्रभाव। यह कृषकों द्वारा छेड़े गए संघर्षों की संख्या से ही स्पष्ट हो जाता है। एक विद्वान ने मुगल काल से लेकर 1970 के दशक में 77 कृषक विद्रोहों का अनुमान लगाया है। यहाँ तक कि गृह मंत्रालय ने 1960 के दशक में आंध्र प्रदेश, असम व उत्तर प्रदेश में पाँच, बिहार, उड़ीसा व राजस्थान में तीन तथा तमिलनाडू में दो आन्दोलनों का उल्लेख किया हैं। यूरोपीय महाद्वीप में 1336 से 1789 तक एक अनुमान के अनुसार 125 कृषक विद्रोह हुए जिनमें जर्मन कृषक युद्ध शामिल नहीं है।

तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में कृषक संघर्ष के विभिन्न रूप हो सकते हैं और इन्हें चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता हैं : 1) राष्ट्रवादी, 2) सामन्त विरोधी, 3) राज्य या शासन विरोधी तथा 4) भूमण्डलीयकरण विरोधी अथवा नवीन कृषक-किसान आन्दोलन। यह आतंकवादी, धार्मिक, डाकाजनी, उदार सुधारवादी इत्यादि कोई भी रूप ग्रहण कर सकते हैं।

24.4.1 राष्ट्रवादी

इसे उपनिवेश या साम्राज्य विरोधी आन्दोलन भी कहा जाता था जिसे कृषकों ने स्वतन्त्र रूप से या राष्ट्रीय आन्दोलन के हिस्से के रूप में चलाया था। स्वयं उपनिवेशवादियों द्वारा या उनके विभिन्न अभिकर्त्ताओं द्वारा, जिनमें उपनिवेशों में स्थापित नये सामाजिक सम्बन्ध भी थे, कृषकों के औपनिवेशिक शोषण ने इसकी भागीदारी को उकसाया। क्यूबा, रूस, वियतनाम, चीन, अल्जीरिया व भारत में कृषकों ने राष्ट्रीय संघर्षों में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। भारतीय संदर्भ में उपनिवेशवादियों ने कृषक वर्ग का प्रत्यक्ष रूप से और नई कृषिक संरचनाओं जमींदारी व रैयतवारी की स्थापना करके दोनों तरह शोषण किया। इस व्यवस्था ने ऐसी सोपानक्रम सामन्तवादी व्यवस्था स्थापित की जिसमें कृषकों का जीवन दूभर हो गया। ब्रिटिश काल में ऐसे कई उपनिवेश-विरोधी आन्दोलन हुए जो स्वतन्त्र रूप से या राष्ट्रीय आन्दोलन के हिस्से के रूप में जनजातियों या किसानों द्वारा चलाए गए थे। अंग्रेज़ों, अंग्रेज़ी उपनिवेशवादियों या उनके औपनिवेशिक अभिकरणों के विरुद्ध जनजातियों व किसानों के नेतृत्व में चले संघर्ष निम्नांकित हैं:

- सन्यासी विद्रोह 1771-1789
- मुन्डा बगावत 1797
- दलभूम के राजा 1769-1774
- छोटा नागपुर के कोली, हो और मुंडा 1831-32
- तरार विद्रोह 1820
- सूथाल बिहार 1855-56
- भोक्ता विद्रोह 1857
- बिरसा बगावत 1890-95
- कोल विद्रोह 1831-32
- दक्खन विद्रोह उन्नीसवीं शताब्दी
- बोरली संघर्ष उन्नीसवीं शताब्दी

इसके साथ ही, ब्रिटिश शासन के दौरान कृषकों के मुद्दे राष्ट्रीय कार्यसूची का हिस्सा बन गए विशेषकर जब गाँधी और कांग्रेस ने इन्हें उठाया। वास्तव में गाँधीजी ने तीन महत्वपूर्ण संघर्षों का नेतृत्व किया जिसके कारण कृषक उस राजनीतिक राष्ट्रीय आन्दोलन के भाग बन गए जिनका नेतृत्व गान्धी कर रहे थे। गाँधी ने चंपारन (1918), खेड़ा (1919) और बारडोली (1920) संघर्षों का नेतृत्व किया। इन संघर्षों में मुख्य मुद्दे थेः प्राकृतिक आपदा के दौरान वसूली, लगान या राजस्व में कटौती या तीन काटिया व्यवस्था (बारडोली)। 1936 में फैज़पुर कांग्रेस ने प्रसिद्ध कृषिक कार्यक्रम स्वीकार किया। परन्तु गांधी और कांग्रेस की विफलता ने कई स्वतन्त्र कृषक संगठनों का मार्ग प्रशस्त किया - विशेष रूप से किसान सभाएँ बनी प्रारंभ में कांग्रेस के प्रभाव में व बाद में साम्यवादी प्रभाव से। साम्यवादी विचारधारा में कृषक विद्रोह कोई नई घटना या भारत तक सीमित नहीं है। फिलीपीन्स में मध्य लुजान में 1946-52 में साम्यवादियों ने काश्तकारी अधिकारों या काश्तकार-भूमिपति सम्बन्धों को बदलने के लिए संघर्ष किया। चीन, क्यूबा, वियतनाम में इन्होंने उपनिवेशवादी साम्राज्यवादी ताकतों के विरुद्ध या उनके अभिकरणों के खिलाफ़ संग्राम कर आमूल परिवर्तन किये। रूस में क्रान्ति के दौरान कृषकों ने औद्योगिक श्रमिक वर्ग या लेनिन के नेतृत्व में बोल्टाविक दल के साथ कंधा मिलाया। भारत में औपनिवेश या उत्तर औपनिवेशिक काल में कृषकों ने किसान सभाओं या कम्यूनिस्ट दलों के अंतर्गत कई संघर्ष किएः 1920 में किसान सभाओं ने जमींदार ज़ुल्म के विरुद्ध लड़ाई की, कच्यूर में 1940 के दशक में साम्यवादियों ने संघर्ष का नेतृत्व किया, तेभाग में भी संघर्षरत रहे। उत्तर-स्वतंत्रता काल में 1946-51 में उन्होंने तेलंगाना संघर्ष का नेतृत्व किया और 1967-71 के बीच प्रसिद्ध नक्सलवादी आन्दोलन चलाया।

24.4.2 सामन्त विरोधी

कृषक संघर्ष का दूसरा महत्वपूर्ण रूप सामन्त विरोधी संघर्ष है। यह सामन्तवादी वर्गों के अत्याचार तथा गुलामी, बेगारी, अधिक लगान, अबवाव तथा मजबूरन श्रम के विरोध के रूप में छेड़ा जाता है। मध्यकालीन यूरोप में जर्मनी, हंगरी, आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड आदि में बहुत से सामन्तवाद - विरोधी आंदोलन हुए। ऐसा एक प्रसिद्ध संघर्ष 1514 का डोज़ा (Dozsa) संघर्ष था। भारत में ब्रिटिश शासन के बाद ऐसे विद्रोह होते ही रहे। इन विद्रोहों का कारण यह था कि ब्रिटिश प्रशासन ने भारत में नई कृषिक संरचनाएँ बनाई जिनसे सामन्तवादी संरचनाएँ व सम्बन्ध सोपानक्रमिक हो गए। कई स्थानों में जमींदार व सामन्तशाही सम्बन्ध बने जिनकी कृषि उत्पादन बढ़ाने में इतनी रूचि नहीं थी जितनी कृषकों व काश्तकारों के शोषण में जैसे भारत के तटवर्ती क्षेत्रों में वार्गदार ऐसा वर्ग था। औपनिवेशिक शासन के दौरान व उसके बाद भारत में हुए सामन्तवादी विरोधी आन्दोलन निम्नांकित हैं:

- कर्नाटक में नागर कृषक विद्रोह - 1830-33
- जमींदारों के विरुद्ध पाबना विद्रोह - 1870
- जमींदारों के विरुद्ध मोपला विद्रोह - 1920 के दशक में
- जमींदारों के विरुद्ध एलारिंजी विद्रोह - 1941
- केरल में नादियांगा संघर्ष - 1940 के दशक में
- कर्नाटक में कोडागू सत्याग्रह - 1951
- महाराष्ट्र में वोरली संघर्ष - 1945
- केरल में कोटियूर संघर्ष - 1945

24.4.3 राज्य/शासन विरोधी संघर्ष

राज्य या शासन विरोधी संघर्ष दो प्रकार के हैं: एक जो पूर्ण रूप से राज्य संरचना का विरोध करते हैं; दूसरे वह जो राज्य या सरकार की किन्हीं नीतियों का विरोध करते हैं और इस प्रक्रिया में वह राजनीतिक तंत्र से अधिक सुविधाओं की माँग करते हैं। उपनिवेश विरोधी संघर्ष मुख्य रूप से राज्य विरोधी संघर्ष थे क्योंकि कृषकों के विचार से उपनिवेशवाद उनके अस्तित्व के लिए एक खतरा था। स्वतन्त्रता या क्रान्ति के बाद भी नये राज्य या सरकार के विरुद्ध आन्दोलन किये जाते रहे हैं। रूस में कुलाकों का विद्रोह ऐसा ही एक उदाहरण है। भारत में तेलंगाना व नक्सलवादी आन्दोलन राज्य/शासन विरोधी आन्दोलन माने जा सकते हैं। हालांकि राज्य द्वारा दमन के कारण यह दीर्घकाल तक चल नहीं पाए। किन्तु भारत में राज्य/शासन विरोधी आन्दोलन का एक आयाम और भी है: यह दृष्टिगम हुआ जब स्वतन्त्रता के पूर्व और बाद में देशी रियासतों के भारतीय संघ में विलय की माँग कर रही ताकतों का बड़ी संख्या में कृषकों ने भी समर्थन किया।

अंत में राज्य/शासन विरोधी आन्दोलन, कृषकों को सरकार से या राज्य से अधिक सुविधाएँ दिलाने के लिए भी जुटे रहे हैं। यह कृषि उद्योग का दर्जा दिए जाने, समर्थन मूल्य, भूमि सुधारों का प्रभावशाली रूप से कार्यान्वयन की माँग के रूप में प्रकट होता है। इस प्रक्रिया में संघर्ष का यह रूप विभिन्न श्रेणियों के कृषकों द्वारा अपने वर्ग के लिए माँगों को स्थान भी देता है। उदाहरण के लिए, खेतिहर मज़दूर हरित क्रान्ति के बाद से औद्योगिक वर्गों के बराबर या अधिक मज़दूरी, बोनस, स्वास्थ्य सुविधाओं, काम के निश्चित घंटों आदि की माँग करते रहे हैं। इस कारण विश्व के विभिन्न भागों में हिंसात्मक घटनाएँ भी घटी हैं। भारत में तमिलनाडू के तंजौर में खेतिहर मज़दूरों के घर जला दिए गए और उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया।

24.4.4 भूमण्डलीकरण विरोधी या नए कृषक/किसान आन्दोलन

यह हाल के वर्षों के नए प्रकार के कृषक आन्दोलन हैं। वास्तव में यह पाश्चात्य विश्व के सामाजिक आन्दोलन का हिस्सा है। परम्परागत संघर्षों की अपेक्षा यह आन्दोलन अनेक मुद्दों को उठाते हैं जैसे महिलाएँ, पर्यावरण, आणविक, मानव अधिकार आदि। यह नये कृषक/किसान आन्दोलन इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि में नज़र आते हैं पर यह भारत के आन्दोलनों जैसे जोरदार नहीं है।

यह कई कारणों से नये कहे जा सकते हैं। वे कई मुद्दों से जुड़े हैं जैसे अभाव, विकास, अर्थव्यवस्था व्यापार शर्तें, शहरी-ग्रामीण विभेद इत्यादि। दूसरा, इनकी सक्रियता ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, वे वृहद गठबन्धनों में यकीन रखते हैं जो राज्य व राष्ट्र की सीमाओं से परे हैं, वे उन मुद्दों के लिए लड़ते हैं जो कृषकों की सभी श्रेणियों को प्रभावित करते हैं जैसे समर्थन मूल्य, ऋण, बिजली आपूर्ति तथा वृहद मुद्दे जैसे भूमण्डलीकरण व उदारीकरण का देश विशेष की ग्रामीण जनता पर प्रभाव आदि। तीसरे, यह सामाजिक व्यवस्था या परिवेश के भेद के बिना विभिन्न श्रेणियों के कृषकों

में एकता में यकीन रखते हैं। दूसरे शब्दों में यह आन्दोलन कृषक वर्ग को छोटे, बड़े, धनी इत्यादि में वर्गीकृत किये जाने का विरोध करते हैं। चौथे, भारत या अन्य देशों के पहले आन्दोलनों के विपरीत यह उग्रवाद या हिंसा को अपने तौर तरीकों का प्रमुख केन्द्र बनाए जाने से परहेज करते हैं हालांकि एक दो मामलों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश या उदारीकरण के विरोध में हिंसा का सहारा भी लिया गया। पर अधिकांशतः यह अहिंसात्मक साधनों, सत्याग्रह, पद यात्रा, शान्तिपूर्ण विरोध, हड़तालों आदि का सहारा लेते रहे हैं। कभी कभी इन्होंने गाँवबन्दी या चक्का जाम जैसे हथकण्डे भी अपनाए हैं। इनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार देश में अंतर्राष्ट्रीय पूँजी के प्रवेश का विरोध या समर्थन है जिससे विभिन्न श्रेणियों के कृषक विस्थापित हो जाएंगे। विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम, विश्व व्यापार संगठन आदि के सम्बन्ध में विश्व निकायों या पाश्चात्य देशों द्वारा प्रस्तुत चर्चा में भी यह आन्दोलन विरोधी विचार प्रकट करते हैं। साथ ही नये कृषक आन्दोलन पाश्चात्य देशों की तृतीय विश्व के देशों के सम्बन्ध में प्रस्तुत नीतियों का उन्हीं के देशों में बढ़ते विरोध से भी संबंधित हैं। यह विरोध तृतीय दुनिया निर्भरता सिद्धान्त के वैचारिक ढांचे में अभिव्यक्त किया जा रहा है हालांकि गांधीवाद, मार्क्सवाद, रोज़ा लक्ज़मबर्ग के आंतरिक उपनिवेशवाद उनके लिए मुख्य आधार है। वास्तव में एक विशेष आन्दोलन, शेतकारी संगठन ने 'भारत बनाम् इन्डिया' पर ज़ोर दिया है ताकि शहरी/पाश्चात्य भारत तथा ग्रामीण भारत में अंतर समझा जा सके और यही इसका वैचारिक आधार है।

भारत में नये कृषक/किसान आन्दोलन के लक्षण 1970 के दशक के आरंभ में पंजाब में खेतीबारी जमींदार यूनियन तथा तमिलनाडू में तमिलिगा व्यावसायगल संगम की स्थापना में देखे जा सकते हैं। इसी अवधि में भारत के विभिन्न भागों के श्रमिक राजनीति दलों की छत्रछाया में बैठकें व सम्मेलन भी कर रहे थे। ऐसे ही एक सम्मेलन में उन्होंने समर्थन मूल्यों, विभिन्न निकायों में कृषकों के प्रतिनिधित्व, उद्योगों व कृषि में बढ़ती असमानताओं को पाटने, कृषि उत्पादों के लिए अनुपूर्ति देने, आय की असमानाएँ कम करने, ग्रामीण क्षेत्रों को अधिक धन आवंटित करने की माँग की थी।

इसी अवधि में पंजाब खेतीबाड़ी यूनियन ने छः प्रमुख आन्दोलन किएः एकल खाद्य क्षेत्र (Single Food zone) के विरुद्ध (1974), जल व सैस की दरों में वृद्धि के खिलाफ (1975), दोषपूर्ण ट्रेक्टरों के खिलाफ़, गन्ने के ग़ैर-लाभकारी मूल्यों के खिलाफ़ (1975) तथा डीज़ल कीमतों (1975) पर। इसी बीच तमिलिगा व्यावसैगल संगम ने भी कई आन्दोलन कियेः बिजली कीमतों में वृद्धि, कृषि आय कर, भूमि कर, सैस के विरुद्ध, ऋण राहत, खेतिहर मज़दूरों को अनुपूर्ति, विभिन्न फसलों के लाभकारी मूल्यों को लेकर।

1980 के दशक में इन आन्दोलनों को नई दिशा मिली जब महाराष्ट्र में शेतकारी संगठन, उत्तर प्रदेश में भारतीय किसान यूनियन तथा कर्नाटक में कर्नाटक राज्य रैण संघ ने अपने अपने क्षेत्रों में कई आन्दोलन किये। इन आन्दोलनों से कई मुद्दे विवाद का केन्द्र बने हैं : लाभकारी मूल्य, ऋण माफी, वैज्ञानिक मज़दूरी नीति, शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में अंतर को पाटना आदि। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तो भूमण्डलीकरण का विरोध है।

ऐसा माना जा रहा है कि **भूमण्डलीकरण** से विभिन्न श्रेणियों के कृषक, कृषक नहीं रहेंगे, बेरोज़गारी बढ़ेगी, सांस्कृतिक संकट उत्पन्न होगा, कृषक अर्थव्यवस्था बदल जाएगी, पेटेन्ट की समस्या उत्पन्न होगी और अंततः भारत पाश्चात्य देशों का उपनिवेश बन जाएगा। परन्तु सभी कृषक आन्दोलन भूमण्डलीकरण का विरोध नहीं करते। महाराष्ट्र का कृषक आन्दोलन भूमण्डलीकरण का इस आधार पर समर्थन कर रहा है कि इससे भारतीय कृषक अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में प्रवेश कर उससे अत्यधिक लाभ प्राप्त कर सकेंगे। इसे आशा है कि इससे प्रतियोगी पूँजीवाद आएगा तथापि विरोधी विभिन्न आन्दोलनों के द्वारा तथा देश के विभिन्न भागों में सीधे बहुराष्ट्रीय शाखाओं पर प्रहार कर रहे है। कर्नाटक में कारगिल कम्पनी, कैन्टकी फ्राइड चिकन तथा मान्स्टान्सो के टर्मिनेटर बीजों को कृषकों के क्रोध का शिकार होना पड़ा है। विश्व स्तर पर अन्य कई संगठन इस विरोध में शामिल हुए हैं। ऐसा ही एक संगठन मलेशिया स्थित थर्ड वर्ल्ड नैटवर्क है और दूसरा इंग्लैण्ड का मैक लिबल। फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी आदि के कृषकों ने भी इनका समर्थन किया है। इससे यह प्रकट होता है कि वर्तमान संदर्भ में कृषकों को नासमझ मानना व उनके हितों को गाँवो की सीमा के अंदर ही देखना भूल होगी।

बोध प्रश्न 3

नोटः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) नये कृषक/किसान आन्दोलन से आप क्या समझते हो?

.....

.....

.....

.....

.....

2.) कृषक/किसान आन्दोलनों की विविधता का परिचय दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) कृषक वर्ग के सामन्तवाद विरोधी आन्दोलन का क्या अभिप्राय है?

.....

.....

.....

.....

.....

24.5 सारांश

इस इकाई में आपने ग्रामीण क्षेत्र के 'कृषक वर्ग' का परिचय प्राप्त किया है। आपने यह भी जाना है कि उन्हें किस प्रकार छोटे, बड़े, धनी आदि में वर्गीकृत किया जाता है तथा उन्होंने भारत सहित विभिन्न देशों में क्या ऐतिहासिक भूमिका निभाई है? राज्य, सामन्तवाद तथा भूमण्डलीकरण के खिलाफ़ किस प्रकार के संघर्ष किये हैं तथा उनकी गतिशीलता के निर्धारक तत्व कौन से हैं। अब यह एक वास्तविकता है कि 'कृषकों को गाँव के भोले भाले, विनीत कोटि का मानना एक भूल होगी, वह इतिहास की सक्रिय ताकतें हैं। अतः इतिहास में किसी भी प्रकार के जन संघर्ष में कृषक वर्ग का उल्लेख अवश्यभावी है।

24.6 शब्दावली

कृषक : भरण पोषण के लिए भूमि पर काम करने वाला।

सामन्तवाद : आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था जिसमें अधिपतियों को सैन्य व अन्य सेवाएँ प्रदान करने के बदले जागीरदारों का भूमि पर अधिकार था।

पूँजीवाद : आर्थिक व्यवस्था जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है।

उपनिवेशवाद : आर्थिक लाभ के लिए विदेशी ताकतों द्वारा कब्ज़ा जमाना।

बाज़ार : वस्तुओं के क्रय विक्रय का स्थान

24.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

एरिक वोल्फ, *पीसेन्ट वार्स ऑफ टवन्टियर्थ सैन्चुरी*, लंदन 1975।

इरफान हबीब, *एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुग़ल इन्डिया, 1556-1707*, मुम्बई, 1963।

थियोडोर शेनिन, *पैज़ेन्ट एण्ड पेज़ेन्ट सोसाइटीज़*, हार्मन्डस्वर्थ, 1976।

टॉम ब्राज (सं.) *न्यू फार्मर्स मूवमैंट इन इन्डिया*, इंग्लैण्ड, 1995।

मुज़फ्फर असादी, *पेज़ेन्ट मूवमैन्ट इन कर्नाटक*, 1980-84, दिल्ली, 1997।

24.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) जोतों के आकार, दूसरों का शोषण करने की क्षमता तथा उत्पादन की तकनीकों पर नियन्त्रण के आधार पर कृषक को परिभाषित किया जा सकता है।
2) सीमान्त, निर्धन, छोटा, धनी, मध्यम व बड़ा। इसमें खेतिहर मज़दूर तथा जमींदार शामिल हैं।
3) कृषक वह व्यक्ति है जो आजीविका के लिए भूमि पर निर्भर है।

बोध प्रश्न 2

1) तकनीकी विकास, कृषिक संरचना, पारिस्थितिक परिवर्तन, जाति व सामुदायिक सम्बन्ध, सरकारी नीतियाँ, ऐतिहासिक तत्व/घटनाएँ आदि।
2) सामन्तवाद के विनाश व तृतीय दुनिया के देशों का शोषण करके पाश्चात्य देशों में कृषि में पूँजीवाद अंदर से ही प्रस्फुटित हुआ; भारत में यह ऊपर से थोपा गया।

बोध प्रश्न 3

1) तौर-तरीकों, विचारधारा, चर्चा व मुद्दों के आधार पर वे नवीन हैं। वे कृषकों में परस्पर एकता व वर्गीय एकजुटता में विश्वास रखते हैं। वे भूमण्डलीकरण, अंतर्राष्ट्रीय पूँजीवाद के मुद्दों पर विचार करते हैं।
2) राष्ट्रवादी, सामन्तवादी विरोधी, राज्य विरोधी तथा भूमण्डलीकरण विरोधी।
3) सामन्तवाद विरोधी आन्दोलन उन जमींदारों के खिलाफ था जिनकी कृषि के विकास में कोई रुचि नहीं थी और वे काश्तकारों के शोषण पर निर्भर थे।